ऋग्वेद में राष्ट्र और राष्ट्रीयता

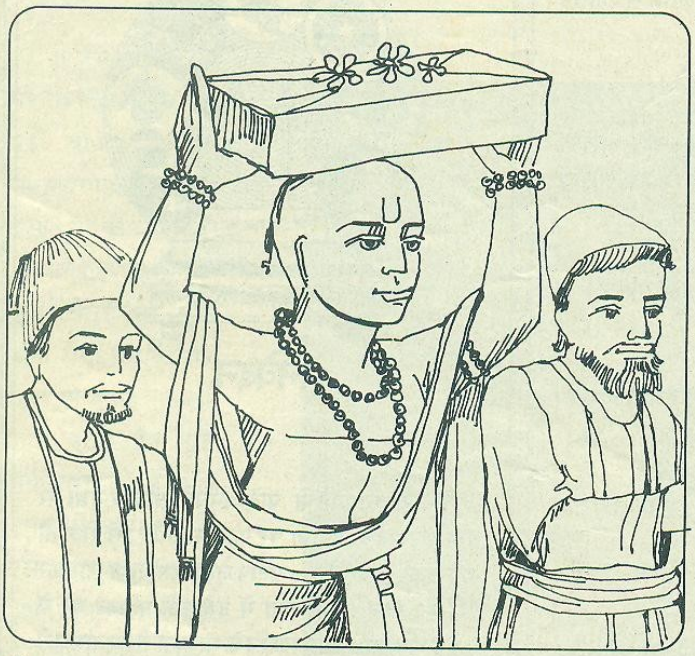

जो लोग रातदिन गोस्वामी तुलसीदास के श्री राम चरितमानस की चौपाई'' कोऊ नृप होय, हमें का हानी, चेरि छाँडि कब होयहु रानी'' की रटु लगा लगाकर यह सिध्द करना चाहते हैं कि हम हिन्दुओं में राष्ट्र के प्रति कोई कर्तव्य – निष्ठा नहीं है चाहे देश या राष्ट्र कहीं जाये, उन्हें इस बात की परवाह तक नहीं है कि चाहे कोई राजा हो, हमें इससे क्या लेना देना वे नीमहकीम यह देखें कि हम हिन्दुओं के पूर्वज आर्यों में अपने देश, अपने राष्ट्र और – अपनी राष्ट्रीयता का कितना मान – सम्मान मौजूद था। हमारे प्रथम साहित्य ऋग्वेद में इस प्रकार की भावनाओं का कितना प्रचार प्रसार थमा यह देखने का विषय है। देखिये, अकेला ऋग्वेद ही (जिसे कुछ लोग केवल धर्मग्रन्थ मानते हैं) राष्ट्र और राष्ट्रीयता के कैसे कैसे विचार व्यक्त करता है।

।। राष्ट्र।।

इस 'राष्ट्र' शब्द पर जितना विचार अर्थववेद में हुआ है, उतना विचार कहीं और नहीं हुआहै तो भी देखिये ऋग्वेद क्या कहता हैं। ऋग्वेद की ऋचायें कहती हैं

१– **उष्ट्रो न पीपरो मृधः**। १.१३८.२

अर्थात् हे पूषा। तुम हमारे राष्ट्र को शत्रुओं से रहित करो।

जिस समय इस ऋचा की रचना हुई होगी उस समय सारा संसार शायद यह भी नहीं जानता होगा की 'राष्ट्र' किस चिडिया का नाम हैं। ऋषि फिर कहता है

२– **ऋतेन । राजन अनृतं विविच्चन** । १०.१२४.५

अर्थात हे राजा वरुण! तुम सत्य और असत्य को पृथक करो।

और

३– **मम राष्ट्र स्याधि पत्यमेहि** । १०.१२४.५

अर्थात हे राजा वरूण! तुम हमारे राष्ट्र के अधिपत (= राजा) बनो।

क्योंकि वरुण ब्रम्ह के समान शक्तिशाली थे। कहीं कहीं तो वरुण ब्रह्म के ही एकरूप थे। हमारे सम्राट इन्द्र अजेय – वीर थे तभी ऋषि ने यह स्त्रोत रचा था।

४– **युवा राष्ट्र बृहदिन्वति द्यौः**।–७.८४.२

अर्थात हे इन्द्र – वरुण! तुम दौनो का द्युलोक रुपी राष्ट्र सबको सुख देता है।

हैं संसार के किसी अन्य साहित्य में 'राष्ट्र' के प्रति ऐसे महान, उच्च और श्रेष्ठ उदगार ? आईये, अब देखे हमारे ऋग्वेदीय – ऋषिगण 'राष्ट्रीयता' के विषय में क्या क्या सोचा – विचारा करते थे। एक मुलाहिजा हो जाय।

।। राष्ट्रीयता।।

जिस स्वराज्य की कल्पना महत्मा गांधी किया करते थे उस स्वराज्य के अंकुर हमारे ऋग्वेद में विद्यमान थे। हमारे ऋषि – मुनि कहा करते थे–

१ **अर्जन्नु स्वराज्यम्**। १.३०.२

अर्थात हम स्वराज्य का आदर करें।

२– इद **नमो वृषभाय स्वराजे**। १.२५.१५

अर्थात सुखों के वर्षक स्वराज्य को नमस्कार है।

हमारे पूर्वज स्वराज्य की महिमा जानते थे। भारतवर्ष में यह कोई नया विचार नहीं हैं जो योरप से आया हो। यह तो हमारी सॉस सॉस में रचा – बसा विचार है, ऋषि कहता है–

३– **कच्चन प्रियम न मिनन्ति स्वराज्यम्**। ५.८२.२

अर्थात, प्रिय स्वराज्य को कोई नष्ट नहीं कर सकता।

४– **तं घेमित्ना नमस्विन उप स्वराज मासते**। १.३६.७

अर्थात भक्तगण स्वराज्य की उपासना करते हैं।
हमारे ऋषि मुनि स्वराज्य का मोल जानते थे। यदि नहीं जानते होतेतो वे सारे संसार को अपने आधीन कैसे कर सकते थे। इतिहास साक्षी है कि महा भारत काल तक सारा संसार आर्यो से शासित था। वे कहा करते थे–

५– **व्यचिष्ठे बहुपाट्य येतमहि स्वराज्ये** । ५.६६.६

अर्थात् हम स्वराज्य के लिये यत्नशील हैं।
हम व्यापक हैं और बहुजर्तो द्वारा रक्षणीय हैं। उनका अखण्ड विश्वास था कि जब तक इन्द्र हमारा रक्षक है तबतक हमारा कोई अहित नहीं कर सकता। वे गर्व के साथ कहते थे

६– **सुगोपा असि न दमाया सुक्रेता**। ५.४४.२

अर्थात हे इन्द्र। तुम रक्षक हो। तुम्हें कोई दबा नहीं सकता।

।। उपसंहार।।

राष्ट्र और राष्ट्रीयता के साथ साथ पूर्व के आर्यो में अपनी स्वराज्य की भावना कितनी बलवली थी। एक मंत्र देखिये–

ऋत्रिमनु स्वराज्य मरिन मुक्थानि वावृधः। २.८.५

अर्थात् शत्रुनाशक एँक स्वराज्य अरिन को हमारी स्तुतियॉ बटाती हैं।

ऋषि ताल ठोककर गाता है

इदं कसेरादित्यस्तय स्वरज्ञः। २.२८.१

अर्थात क्रांतदर्शी एवं स्वराज्यरुपी सूर्य के लिये यह स्त्रोत है।
यह वही भावना है जिस भावना ने हमारे वर्तमान महाकवी श्री. जयशंकर प्रसाद से यह पंक्तिया लिखवा ली थीं।

।। जियें तो सदा इसी के लिये, यही अभिमान रहे यह हर्ष।
न्यौछावर करदें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारत वर्ष।।

लेखक

■ **रसिक बिहारी मंजुल**

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली – ११०००७